24 विद्रधि एवं नाड़ीव्रण (Abscess, Sinus & Fistula)

• Learning Objectives •

- To know and understand the *vidradhi* and *nadi vrana* as well as abscess, sinus and fistula.
- Nature of disease : Chronic
- Major involving dosha : *vata, pitta, kapha*
- Site of manifestation : whole body
- Types
  - *Vidradhi :* 6
  - *Nadi vrana :* 5 or 8
  - Sites for *Antarvidradhi :* 10
- Cardinal feature of *Nadi vrana* : abnormal opening in body and discharge from it.
- Principle for management of *vidradhi :* Where there is pus, let it out.
- Prognosis
  - Curable : single *dosha* dominant *nadi vrana* and *vidradhi* and *Aagantuj nadi vrana.*
  - Incurable : *sannipataj nadi vrana* and *vidradhi, vidradhi* in *hrudaya, basti, nabhi.*
- Modern correlation :
  - *Vidradhi* : could be correlated with abscess.
  - *Nadi vrana :* could be correlated with sinus and fistula.

निरूक्ति : 'विदहति इति विद्रधिः'

विदाह होने के होने के कारण इसे विद्रधि कहा जाता है।

दुष्टरक्तातिमात्रत्वात् स वै शीघ्रं विदह्यते।
ततः शीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधीत्यभिधीयते।। (च.सू. 17/95)

आचार्य चरक के अनुसार इसमें रक्त की अति दुष्टि होने के कारण शीघ्र विदाह अथवा शीघ्र पाक होता है, इसलिए इसे विद्रधि कहा जाता है।

निदान

शीतकान्नविदाह्युष्णरूक्षशुष्कातिभोजनात्।
विरूद्धाजीर्णसंक्लिष्टविषमासात्म्यभोजनात्।
व्यापन्नबहुमद्यत्वाद्वेगसंधारणाच्छ्रमात्।
जिह्मव्यायामशयनादतिभाराध्वमैथुनात्। (च.सू.17/91, 92)

आचार्य चरक ने विद्रधि के कारण बताए हैं : शीतपदार्थ, विदाही, उष्ण, रूक्ष, शुष्क, अतिभोजन, विरूद्ध अन्न, विषमाहार, असात्म्य, मद्यसेवन, वेगसंधारण, अतिव्यायाम, अतिभारवहन, अधिक पैदल चलना, अतिव्यवाय।

गुर्वसात्म्यविरूद्धान्न शुष्क संसृष्ट भोजनात्।
अतिव्यवायव्यायाम वेगाघातविदाहिभिः।
पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम्।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ती विद्रधीम्। (सु.नि. 9/16,17)

आचार्य सुश्रुत के अनुसार गुरू, असात्म्य, विरूद्ध अन्न, शुष्क, संसृष्ट, अतिव्यवाय, अतिव्यायाम, वेगावरोध, विदाही द्रव्य सेवन, भिन्न-भिन्न दोष/एकत्रित दोष गुल्माकार होकर वल्मीक के समान उन्नत (elevated) विद्रधि विकार को उत्पन्न करते हैं।

सम्प्राप्ति

त्वग्रक्तमांस मेदांसि प्रदूष्यास्थि समाश्रिताः।
दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम्।
महामूलं रुजावन्तं वृत्तं चाप्यथवाऽऽयतम्।
तमाहुर्विद्रधिं धीरां विज्ञेयः स च षड्विधः।। (सु.नि. 9/4-5)

अत्यंत प्रकुपित दोष अस्थि धातु में स्थित होकर रक्त, मांस तथा मेदोधातु को दूषित करते हैं और धीरे धीरे भयंकर शोथ वाली विद्रधि को उत्पन्न करते हैं। यह विद्रधि महामूल (गंभीर धातुओं में समाश्रित), पीड़ायुक्त, गोल (वृत्त), अथवा आयत (दीर्घ, फैला हुआ) के समान आकार वाली होती है तथा इसके छः (6) भेद होते हैं।

प्रकार

आचार्य चरक के अनुसार विद्रधि के मुख्यतः 2 प्रकार हैं:

- बाह्य विद्रधि
- आभ्यंतर विद्रधि

Scanned with CamScanner

आचार्य सुश्रुत के अनुसार विद्रधि के 6 प्रकार हैं

- वात
- पित्त
- कफ
- त्रिदोषज
- क्षतज
- रक्तज

विद्रधि - सामान्य लक्षण

महामूलं रूजावन्तं वृत्तं चाप्यथवाऽऽयतम्। (सु.नि. 9/5)

विद्रधि शोथ महामूल (Broad base), वेदनायुक्त, वृत्त (Round), आयत (Elongated) स्वरूप का होता है।

विद्रधि-विशेष लक्षण

➲ **वातज विद्रधि**

कृष्णोऽरूणो वा परूषो भृशमत्यर्थवेदनः।
चित्रोत्थान प्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः।

(सु.नि. 9/7)

वातज विद्रधि में कृष्ण, अरूण, परुष (Rough), अधिक वेदनायुक्त एवं विद्रधि में अनेक प्रकार से पाक आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

➲ **पित्तज विद्रधि**

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्।
क्षिप्रोत्थानः प्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः।

(सु.नि. 9/8)

पित्तज विद्रधि में उदुम्बर सदृश् वर्ण, श्याव वर्ण (Blackish), ज्वर एवं दाह, शीघ्र वृद्धि करना तथा पाक होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

➲ **कफज विद्रधि**

शरावसदृशः पाण्डु शीतः स्तब्धोऽल्प वेदनः।
चिरोत्थान प्रपाकश्च सकण्डुश्च कफोत्थितः।

(सु.नि. 9/9)

कफज विद्रधि में शराव सदृश् आकृति (earthen saucer, centrally depressed & periphery elevated), श्वेत वर्ण, शीत, स्तब्ध (Indurated), अल्प वेदना, देर से पाक होना आदि लक्षण होते हैं।

➲ **सन्निपातिक विद्रधि**

नानावर्णरूजास्रावो घाटालो विषमो महान्।
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सन्निपातिकः।

(सु.नि. 9/11)

सन्निपातज विद्रधि में विविध वर्ण, विविध प्रकार की वेदना, विविध प्रकार के स्राव, विशाल आकार, विषम पाक, विषम चिकित्सा आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

➲ **आगन्तुज विद्रधि**

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यसेविनः।
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत्।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः।
एष विद्रधिरागन्तुः पित्तविद्रधि लक्षणः।

(सु.नि. 9/12,13)

अश्वपतन, प्रहार आदि कारणों से उत्पन्न व्रण तथा अपथ्य सेवन के कारण वात प्रकोप होकर रक्त एवं पित्त को विकृत कर देता है जिससे ज्वर, तृष्णा, दाह आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इसको आगन्तुज विद्रधि कहा जाता है। इसके लक्षण पित्तज विद्रधि के समान होते हैं।

➲ **रक्तज विद्रधि**

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरूजा ज्वरः।
पित्तविद्रधि लिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरूच्यते।।

(सु. नि. 9/14)

रक्तज विद्रधि में कृष्णस्फोट (Black blister), श्याव वर्ण, तीव्र दाह, ज्वर, वेदना तथा पित्त विद्रधि के सदृश् लक्षण दिखाई देते हैं।

दोष के अनुसार विद्रधि में स्राव

तनुपीतासिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः। (सु.नि. 9/10)

वातज विद्रधि	:	तनु स्राव (Thin)
पित्तज विद्रधि	:	पीत स्राव (Yellowish)
कफज विद्रधि	:	श्वेत स्राव (White)

आचार्य चरक ने पितज विद्रधि में **तिलमाषकुलत्थोदकसन्निभं** स्राव बताया है। (च.सू. 17/99)

अन्तर्विद्रधि : अहितकर आहार-विहार के कारण कुपित दोष गुल्म (गोले) के स्वरूप की और **वल्मीक के समान** ऊँची उठी हुई अन्तर्विद्रधि को उत्पन्न करते हैं।

अन्तर्विद्रधि के स्थान- 10

गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा।
वृक्कयोर्यकृति प्लीह्नि हृदये क्लोम्नि वा तथा।।

(सु. नि. 9/18)

यह अन्तर्विद्रधि गुदा, वस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, वंक्षण, वृक्क, यकृत्, प्लीहा, हृदय तथा क्लोम में उत्पन्न होती है।

अन्तर्विद्रधि के लक्षण

आचार्य सुश्रुत के अनुसार

गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्रात्पमूत्रता।
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारूतकोपनम्।

Scanned with CamScanner

कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे तु विद्रधौ।
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्न्युच्छ्वासावरोधनम्।
सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि शूलश्च दारूणः।
श्वासो यकृति तृष्णा च पिपासा क्लोमजेऽधिका।।

(सु. नि. 9/21, 22, 23)

गुदा के अन्दर विद्रधि होने पर वात (तथा मल) का अवरोध, वस्ति में होने पर मूत्रत्याग में कठिनाई तथा अल्पता, नाभि में होने पर हिक्का तथा आटोप, कुक्षि में होने पर वायु का प्रकोप, वंक्षण में होने पर कमर तथा पीठ में तीव्र जकड़न, वृक्क में होने पर पार्श्वसंकोच, प्लीहा में होने पर श्वास में रुकावट, हृदय में होने पर सारे शरीर में तीव्र जकड़न तथा हृदय में तीव्र शूल, यकृत् में होने पर श्वास और तृष्णा, क्लोम में होने पर श्वास, तृष्णा और पिपासा के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

आचार्य चरक के अनुसार

तत्र प्रधानमर्मजायां विद्रध्यां हृद्घट्टनतमकप्रमोहकासश्वासाः, क्लोमजायां पिपासामुखशोषगलसंग्रहः, यकृज्जायां श्वासः, प्लीहजायामुच्छ्वासोपरोधः, कुक्षिजायां कुक्षिपार्श्वान्तरांसशूलं, वृक्कजायां पृष्ठकटिग्रहः, नाभिजायां हिक्का, वंक्षणजायां सक्थिसादः, बस्तिजायां कृच्छ्रपूतिमूत्रवर्चस्त्वं चेति। (च. सू. 17/101)

प्रधान मर्म (हृदय) में उत्पन्न विद्रधि में हृदय में तीव्र धड़कन (palpitation) तमक श्वास, प्रमोह (unconsciousness) कास, श्वास ये लक्षण होते हैं। क्लोम में उत्पन्न विद्रधि में पिपासा, मुखशोष, गलसंग्रह ये लक्षण होते हैं। यकृत् में उत्पन्न विद्रधि में श्वास रोग हो जाता है। प्लीहा में उत्पन्न विद्रधि में श्वसन क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। कुक्षि में उत्पन्न विद्रधि में कुक्षि (उदर) तथा पार्श्व (पसलियों) के मध्य शूल होता है। वृक्क में उत्पन्न विद्रधि में पृष्ठकटिग्रह (जकड़न) होता है। नाभि में उत्पन्न विद्रधि में हिक्का (हिचकियाँ) आने लगती हैं। वंक्षण में उत्पन्न विद्रधि में सक्थियों (lower extremities) में थकावट सी प्रतीत होती है। बस्ति में उत्पन्न विद्रधि में मल-मूत्र त्याग करने में कष्ट होता है तथा इनमें दुर्गन्ध भी आती है।

स्रावनिर्गम मार्ग : नाभि से ऊपर अर्थात् यकृत्, क्लोम, प्लीहा, ग्रहणी, आमाशय, हृदय, आदि में होने वाली विद्रधियाँ पकने पर ऊपर की ओर जाकर मुख - नासादि से स्रवित होती हैं किन्तु नाभि से नीचे वृक्क, बस्ति, वंक्षण, गुदा में होने वाली विद्रधियाँ पकने पर नीचे की ओर जाकर गुदा और मूत्रमार्ग से स्रवित होती हैं। इनमें नीचे की ओर स्रवित होने वाली विद्रधियों में रोगी ठीक हो जाता है किन्तु ऊपर मुखादि से स्रवित होने वाली विद्रधियों में जीवित नहीं रह सकता है। हृदय, नाभि और वस्ति को छोड़ कर अन्य स्थानों में होने वाली विद्रधियाँ यदि बाहरी त्वचा में विदीर्ण हो जाती हैं तब रोगी कदाचित् जीवित रह सकता है किन्तु हृदय, नाभि और वस्ति की विद्रधियों में रोगी जीवित नहीं रह पाता है।

(सु. नि. 9/25, 26)

अस्थिमज्जागत विद्रधि (Osteomyelitis or Brodie abscess)

अथमज्जपरीपाको घोरः समुपजायते।
सोऽस्थिमांसनिरोधेन द्वारं न लभते यदा।
ततः स व्याधिना तेन ज्वलनेनेव दह्यते। (सु. नि. 9/36)

जब अस्थि में विद्रधि उत्पन्न होती है तब चिकित्सा न करने से मज्जा का भयंकर पाक होता है और जब यह पाक के कारण उत्पन्न पूय बाहर नहीं निकल पाता तब रोगी को ज्वलनवत् वेदना होती है। इस व्याधि में रोगी को चिरकाल तक कष्ट सहना पड़ता है। जब इस अवस्था में शल्यकर्म द्वारा पूय (Pus) को बाहर निकलने के लिए मार्ग मिल जाता है, तब **मेदप्रभ** स्निग्ध, श्वेत, शीत, गुरु, स्राव, अस्थि भेदन करने पर निकलता है। यह व्याधि **सर्व दोषयुक्त** होती है।

स्तनविद्रधि (Breast abscess)

एवमेव स्तन सिरा विवृताः प्राप्ययोपिताम्।
सूतानां गर्भिणीनां वा संभवेच्छ्वयथुर्घनः।
स्तने सदुग्धेऽदुग्धे वा बाह्य विद्रधि लक्षणः।
नाड़ीनां सूक्ष्म वक्त्रत्वात्कन्यानां तु न जायते।

(अ.स.नि.11/19-21)

गर्भिणी एवं प्रसूता स्त्रियों के स्तनों की सिराओं में दोष प्रकोप होकर स्तन विद्रधि उत्पन्न होता है। इसमें शोथ घन होता है तथा बाह्यविद्रधि के दोषानुरूप लक्षण दिखाई देते हैं। कुमारिकाओं में स्तनविद्रधि दिखाई नहीं देता क्योंकि, उनमें स्तन्यवाही सिराओं के मुख सूक्ष्म होते हैं।

आभ्यंतर रक्तज विद्रधि

स्त्रीणामपप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः। दाहज्वरकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः।। (सु. नि. 9/27)

जिन स्त्रियों का गर्भपात हुआ है अथवा जिनका प्रसव योग्य समय पर हुआ है उनमें शीत, रूक्षादि अहितकर आहार सेवन के कारण दाह, ज्वर युक्त भयंकर रक्तविद्रधि रोग उत्पन्न होता है। इसी को आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में Purperal Sepsis कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

अपि सम्यक् प्रजातानामसृक् कायादनिःसृतम्। रक्तजं विद्रधिं कुर्यात् कुक्षौमक्कलसंज्ञितम्। सप्ताहान्नोपशान्तश्चेत्ततोऽसौ सम्प्रपच्यते। (सु. नि. 9/28,29)

योग्य समय पर तथा ठीक से प्रसव होने पर भी प्रसव कालीन रक्त बाहर न आते हुए शरीर में ही रह जाये, तब रक्तज विद्रधि को **मक्कल शूल** कहा जाता है। यह विद्रधि 7 दिन में शांत न होने पर पाक को प्राप्त होती है।

विद्रधि साध्यासाध्यत्व

- वाह्य विद्रधि में सन्निपातिक विद्रधि असाध्य है।
- मर्मगत (Vital parts) विद्रधि कष्टप्रद है।
- हृदय, नाभि, बस्ति विद्रधि मृत्युकारक है।

चिकित्सा

- भेदन व विस्रावण कर्म,
- जलौका प्रयोग,
- अन्तः विद्रधि में ऊषकादि गण के प्रक्षेप से युक्त वरूणादि, क्वाथ का पान,
- करन्जादि घृत व तैल्वक घृत का वाह्य प्रयोग।

विद्रधि एवं गुल्म भेद

न निबन्धोऽस्ति गुल्मानां विद्रधिः सनिबन्धनः।
गुल्माकाराः स्वयं दोषा विद्रधिर्मांसशोणिते।।

(सु. नि. 9/31)

गुल्मों का निबन्ध (मांस, रक्तादि दूष्यों का मूल या बन्धन) नहीं होता है किन्तु विद्रधि निबन्ध युक्त होती है। गुल्म में वातादि दोष स्वयं गोले के स्वरूप में हो जाते हैं किन्तु विद्रधि का निर्माण मांस और रक्त द्वारा होता है।

गुल्मस्तिष्ठति दोषे स्वे विद्रधिर्मांसशोणिते।
विद्रधिः पच्यते तस्मात् गुल्मस्चापि न पच्यते।।

(सु. नि. 9/34)

गुल्म अपने ही दोषों में अवस्थित रहता है जबकि विद्रधि मांस और रक्त में अवस्थित रहती है इसलिए विद्रधि में पाक होता है जबकि गुल्म में पाक नहीं होता है।

➲ Modern correlation : विद्रधि से आधुनिक शास्त्र में Abscess का ग्रहण किया जा सकता है।

ABSCESS

Definition

An abscess is a collection of pus in the body.

There are three varieties of abscess seen in surgical practice :

- Pyogenic abscess
- Pyaemic abscess
- Cold abscess.

Pyogenic abscess

This is the **commonest** variety of abscess. Organisms gain entry to form abscess by direct infection from outside due to penetrating wounds, local extension from adjacent focus of infection, lymphatics and by blood-stream or hematogenous.

Pathology

The suppurative infection gradually leads to cell death and liquefaction. Both tissue cells and those of the exudate are killed by pyogenic organisms. Liquefaction of dead tissue is caused by proteolytic enzyme released from the dead polymorphonuclear leucocytes. The resulting yellow alkaline fluid is called **'pus'**. It contains both disintegrating and living leucocytes and living and dead bacteria.

An abscess is a cavity filled with pus and lined by a pyogenic membrane.

Clinical features

Cardinal features of acute inflammation are usually present. These are : Redness or rubor, Pain or dolor, Heat or calor, Swelling or tumor, Impairment of function or fanctiolaesa. Presence of pus is detected by :

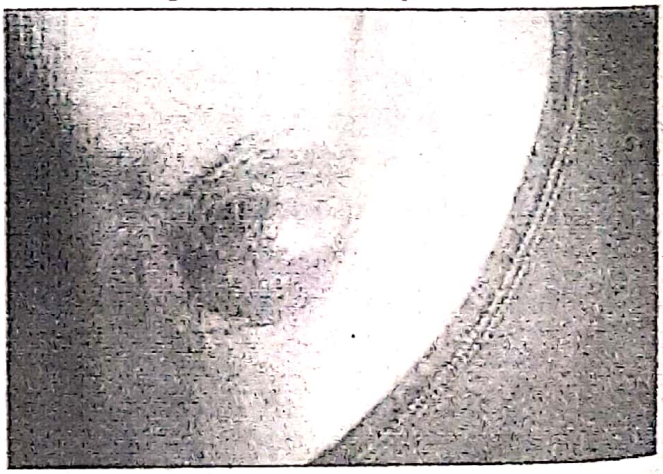

Fig. 1 : Abscess in Axilla

Scanned with CamScanner

- The temperature becomes elevated,
- Brawny edema with induration when the pus is deep seated (e.g. in the breast, parotid gland and ischio rectal fossa),
- When the pus becomes superficial, fluctuation test will be positive.

Treatment

In the initial stage, when the pus is not localized, conservative treatment may be advised. The affected part is elevated and given rest. A suitable antibiotic should be started. When the pus has been localized, it should be drained. The old saying for this is **'where there is pus, let it out.**

So the basic principle of treatment of an abscess is :

- to drain the pus,
- to send a sample of pus for culture and sensitivity test,
- to give proper antibiotic.

Drainage of pus

Incision : Drainage of pus can be done by free incision or by Hilton's method.

➲ **Free or liberal incision :** In this technique a liberal incision is made on the most prominent part of the abscess so as to cause least damage to the surrounding healthy tissue. It should be on the most dependent part also, so that gravity help drainage. Incision must be adequate (liberal) for easy drainage of pus and to avoid chronicity.

➲ **Hilton's method :** This method is chosen when there are important structures like nerves and vessels around the abscess cavity, which are liable to be injured. This is particularly employed in places like neck, axilla or groin.

In this technique the skin and subcutaneous tissue are incised on the most prominent and most dependent part of the abscess cavity. A pair of artery forceps or sinus forceps is forced through the deep fascia into the abscess cavity. The blades of the forceps are gradually opened and the pus is seen to be coming out. The forceps is now taken out with the jaws open to increase the opening in the deep fascia. A finger is introduced to explore the abscess cavity.

Fig. 2 : Drainage of the pus

Exploration

After draining the pus a finger is inserted into the abscess cavity and all the walls of the loculi are broken. There must not be any loculus unbroken otherwise this will lead to chronicity.

Pyaemic abscess

In this condition multiple abscesses develop from infected emboli in pyaemia. Pyaemia is a condition characterized by formation of secondary foci of suppuration in various parts of the body. These foci are caused by the accumulation of septic emboli, consisting of a clump of organisms, infected clot formed as the result of breaking up of an infected thrombus. Pyaemia is occasionally associated with conditions like acute osteomyelitis, acute inflammation of intracranial sinus and acute bacterial endocarditis.

Such pyaemia is also seen in acute appendicitis when the infective emboli pass into the portal venous system and cause portal pyaemia (forming multiple pyaemic liver abscesses).

Three terms should be understood regarding this connection :

➲ **Bacteremia :** This term merely indicates that bacteria are circulating in the blood stream. It probably occurs in every infection and

Scanned with CamScanner

particularly after every tooth extraction due to caries and major traumatic wounds.

- **Septicemia:** This is a condition characterized not only by the presence of bacteria in the blood, but also by the development of certain clinical manifestations due to release of toxins by those bacteria. These clinical manifestations are mainly pyrexia, rigors, hypotension, intravascular coagulation defects and petechial hemorrhages.
- **Toxemia :** In this condition toxins, either chemical or bacterial, circulate in the blood stream. These produce toxemic symptoms.

The features of pyaemic abscess :

- These are generally multiple.
- These abscesses commonly occur in the sub fascial plane.
- Systemic symptoms are tremendous with high fever, rigor and toxemia.
- Such abscesses may occur in the viscera e.g. spleen or kidneys. Death may occur from such abscesses in the vital organs like brain or heart.

Treatment

- Administer the suitable antibiotic i.v. as quick as possible.
- The superficial abscesses should be drained.
- A careful search should be made to locate the source of infection, which should be treated as soon as possible.

Cold abscess

As the name suggests this abscess is 'cold' and non-reacting in nature. It does not produce hot and painful abscess as seen in pyogenic abscess. Brawny induration, edema and tenderness are not present. Only when this is associated with secondary infection, these features may be present.

Cold abscess is almost always a sequel of **tubercular infection** anywhere in the body, commonly in the lymph nodes, bone and joint. Caseation of lymph nodes forms the cold abscess. The commonest sites are at the neck and axilla. On palpation soft and matted nodes are usually palpable.

Sites : While the neck and axilla are the commonest sites, the other sites are :

- Loin from caries spine.
- At the side of the chest wall from tuberculosis of ribs.
- Near the ends of the long bones and joints from bone and joint tuberculosis.

Treatment

Once the diagnosis is confirmed, anti-tubercular regime should be started. If the cold abscess continues to be present, aspiration may be attempted obliquely through the normal surrounding skin and not through the most prominent and most dependent part as this may cause sinus formation.

Note : An incision should not be made on a cold abscess or drainage, as it usually causes secondary infection and forms a persistent sinus.

नाड़ीव्रण

निरूक्ति : तस्यातिमात्रगमनाद् गतिरित्यतश्च नाड़ीव यद्वहति तेन मता तु नाड़ी। (सु. नि. 10/10)

अर्थात पूय के भीतर की ओर अत्यधिक मात्रा में गमन करने से **गति** संज्ञा तथा **नाड़ी** अर्थात् नाली में जल बहने की तरह पूय बहने से नाड़ी कहलाता है।

मधुकोष टीकाकार ने नाड़ीव्रण को कमलनाल सदृश् स्वरूप बताया है।

सम्प्राप्ति

शोफं न पक्वमिति पक्वमुपेक्षते यो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः। (सु. नि. 10/9)

अर्थात् अनुचित (शास्त्र विपरीत) कर्म करने वाला चिकित्सक पक्व शोफ को भी अपक्व समझ कर उपेक्षा कर देता है अथवा जो चिकित्सक अधिक पूय वाले व्रण की उपेक्षा (ignore) कर देता है तब वह पूय त्वक् मांसादि स्थानों को विदीर्ण कर भीतर की ओर गंभीर स्थानों (आशयों या धातुओं) में प्रवेश करता है

Scanned with CamScanner

और नाड़ी मार्ग को उत्पन्न करता है, इसी को नाड़ीव्रण/गति कहा जाता है।

नाड़ीव्रण के प्रकार

आचार्य सुश्रुत के अनुसार नाड़ी व्रण के 8 भेद होते हैं।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च सम्मूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्तोऽन्यथा। (सु.नि. 10/10)

8 भेद : वातज, पित्तज, कफज, वात पित्तज, वात कफज, पित्त कफज, सन्निपातिक, आगन्तुज (शल्य निमित्तज)

आचार्य वाग्भट व आचार्य गयदास के अनुसार नाड़ीव्रण के 5 भेद होते हैं।

सदोषैः पृथगेकस्यैः शल्यहेतुश्चपंचमी। (अ.सं.उ. 34/28)

5 भेद : वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातिक, शल्यज

नाड़ीव्रण के लक्षण

➲ **वातज नाड़ीव्रण**

तत्रानिलात्परूषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपायाम्। (सु.नि. 10/11)

वातज नाड़ीव्रण का मुख सूक्ष्म, कठोर और शूलयुक्त होता है तथा रात्रि में फेनयुक्त स्राव होता है।

➲ **पित्तज नाड़ीव्रण**

तृट्तापतोदसदनंज्वरभेदहेतुःपीतंस्रवत्यधिकमुष्णमहःसु पित्तात्। (सु.नि. 10/11)

पित्तज नाड़ी तृष्णा, ताप, तोद (सुई चुभोने की पीड़ा), अंग ग्लानि, भेदनवत् वेदना से युक्त होती है तथा दिन में उष्ण व पीत वर्ण का स्राव होता है।

➲ **कफज नाड़ीव्रण**

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा रात्रिस्रुतिः स्तिमित-रूक्कठिना सकण्डुः। (सु.नि. 10/12)

कफज नाड़ी मन्द पीड़ायुक्त, कठिन तथा कण्डुयुक्त होती है। तथा रात्रि में अधिक प्रमाण में, घन (गाढ़ा), श्वेत (अर्जुन) और पिच्छिल स्राव होता है।

➲ **द्वन्दज नाड़ीव्रण**

वात-कफज नाड़ीव्रण, वात-पितज नाड़ीव्रण, पित-कफज नाड़ीव्रण के लक्षण उन उन दोषों के संमिश्र के अनुसार दिखाई देते हैं।

➲ **सन्निपातिक नाड़ीव्रण**

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छन वक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि।
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम्। (सु.नि. 10/13)

त्रिदोषज नाड़ीव्रण दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखशोष तथा तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त होता है। सन्निपातिक नाड़ीव्रण को **काल रात्रि** के समान प्राणों का नाश करने वाला समझना चाहिये।

➲ **शल्यजन्य नाड़ीव्रण**

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति।
सा फेनिलं मथितमच्छमसृग्विमिश्रमुष्णं स्रवेत् सहसा सरूजा च नित्यम्। (सु.नि. 10/14)

त्वगादि स्थानों में सूक्ष्म शल्य नष्ट (अदृश्य) होकर शीघ्र ही नाड़ी रोग को उत्पन्न करता है। यह नाड़ी फेनयुक्त, मथित, निर्मल, रक्तमिश्रित उष्णस्राव का स्रवण करती है तथा निरन्तर वेदना युक्त होती है।

नाड़ीव्रण साध्यासाध्यता

नाड़ी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः। (सु.चि. 17/17)

त्रिदोषज नाड़ीव्रण असाध्य है शेष नाड़ीव्रण (वातज, पित्तज, कफज, शल्यज) यत्नपूर्वक चिकित्सा करने पर साध्य होते हैं।

नाड़ीव्रण चिकित्सा

➲ **वातज नाड़ीव्रण चिकित्सा :** सर्वप्रथम उपनाह कर तत्पश्चात् पूय गति (नाड़ी) को विदीर्ण कर (by incision), व्रण में तिल, अपामार्ग बीज, और सैंधव लवण को पीसकर व्रण पर लेप कर व्रणबंधन करना चाहिए।

वातज नाड़ी प्रक्षालनार्थ वृहत् पंचमूल क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए। व्रणशोधन, पूरण एवं रोपण हेतु हिंस्रा, हरिद्रा, कुटकी, बला, गोजिह्वा, बिल्वमूल से सिद्ध तैल का प्रयोग करना चाहिए। (सु.चि. 17/18-19)

➲ **पित्तज नाड़ीव्रण चिकित्सा :** सर्वप्रथम दुग्ध व उत्कारिका (लप्सी) से उपनाह करना चाहिए, तत्पश्चात् नाड़ी को शस्त्र से विदीर्ण कर व्रण में तिल, नागदन्ती, यष्टीमधु के कल्क से व्रणपूरण करना चाहिए।

व्रण प्रक्षालनार्थ सोमलता, निम्ब, हरिद्रा क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए। (सु.चि. 17/20)

➲ **कफज नाड़ीव्रण चिकित्सा :** कफज नाड़ीव्रण में कुलत्थ, सरसों, सत्तू, किण्व (सुराबीज) का उपनाह करना चाहिए। एषणी की सहायता से नाड़ीव्रण का परीक्षण कर भेदन करना चाहिए। व्रण में तिल, निम्ब, स्फटिका, सैंधव लवण के कल्क से पूरण करना चाहिए। व्रण प्रक्षालन हेतु करंज,

Scanned with CamScanner

निम्ब, जाती (चमेली), विभीतक, पीलु क्वाथ का प्रयोग करना चाहिए।

सज्जीक्षार, सैंधव, चित्रक, दन्ती, भूम्यामलकी, श्वेतार्क, अपामार्ग बीज इन द्रव्यों का कल्क लेकर गोमूत्र द्वारा तैल सिद्ध कर कफज नाड़ीव्रण में प्रयोग करना चाहिए।

(सु.चि. 17/23)

➲ **शल्यज निमित्तज नाड़ीव्रण चिकित्सा :** सर्वप्रथम नाड़ीव्रण को विदीर्ण कर शल्य का निर्हरण (removal of foreign body) करना चाहिए और नाड़ी मार्ग का शोधन करना चाहिए। तत्पश्चात् व्रणशोधन व व्रणरोपण हेतु मधुमिश्रित तिल कल्क का प्रयोग करना चाहिए।

नाड़ीव्रण में वर्ति प्रयोग

सभी नाड़ीव्रणों में वर्ति का प्रयोग करना चाहिए। इसमें निम्न वर्तियों का वर्णन किया गया है :

- घोण्टफलादि वर्ति
- विभीतकादि वर्ति
- धत्तूरादि वर्ति
- लवण मधु मिश्रित वर्ति

कोष्ठगत नाड़ीव्रण में गोमांस मसी से निर्मित वर्ति का प्रयोग हितकर होता है।

नाड़ीव्रण में क्षारसूत्र का प्रयोग

एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम्।
सूचीं निदध्याद् गत्यन्ते तथोन्मृज्याशु निर्हरेत्।।
सूत्रास्यान्तं समानीय गाढ़ं बन्धं समाचरेत्।।
ततः क्षारबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत् प्रवेशयेत्।।
क्षाराक्तं मतिमान् वैद्यो यावन्न च्छिद्यते गतिः।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता।।

(सु.चि. 17/30,32)

सर्वप्रथम एषणी (probe) के द्वारा नाड़ीव्रण की दिशा का अवलोकन करें। तत्पश्चात् सूचिका में दीर्घ क्षारसूत्र स्थापित कर उसे नाड़ीव्रण की दिशा में आगे प्रवेश करवायें और व्रण के दूसरे छोर से अथवा नाड़ीव्रण के अंतिम भाग से क्षारसूत्र एवं सूई शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालें। तत्पश्चात् सूई निकालकर क्षारसूत्र के दोनों छोर एक दूसरे से दृढ़तापूर्वक बाँध दें। क्षारसूत्र शिथिल होने पर क्षारसूत्र बदलकर दूसरा क्षारसूत्र प्रविष्ट कर, उसे बाँधें। नाड़ीव्रण के पूर्णतः नष्ट होने तक अथवा नाड़ीव्रण का पूर्णतः छेदन होने तक क्षारसूत्र बाँधते रहें। विद्वान शल्य चिकित्सक भगन्दर में भी क्षारसूत्र का उपयोग नाड़ीव्रण के समान ही करें।

➲ Modern correlation : आधुनिक मतानुसार नाड़ीव्रण से Sinus or fistula का ग्रहण किया जा सकता है।

Sinus

Sinus is a blind track lined by granulation tissue, leading from epithelial surface down into the tissues.

The word sinus derived from Latin word means : hollow or a bay.

Fistula

Fistula is an abnormal communication between lumen of one viscus and lumen of another (internal fistula) or between lumen of one hollow viscus to the exterior (external fistula).

The word fistula derived from Latin word means : flute or a pipe or a tube.

Types

Both sinus and fistula may be congenital or acquired.

➲ **Sinus**

- **Congenital :** Pre auricular sinus.
- **Acquired :** TB sinus, Pilonidal sinus.

➲ **Fistula**

- **Congenital :** Branchial fistula, Trache-esophageal, Umbilical fistula, Congenital AV fistula, Thyroglossal fistula.
- **Acquired :** May be Traumatic, Inflammatory, Malignancy, Iatrogenic.

Causes for persistence of sinus or fistula

- Presence of a foreign body in the track. e.g., suture material.
- Presence of necrotic tissue in the track. e.g., sequestrum (dead bone).
- Insufficient or non-dependent drainage. e.g., TB sinus.
- Distal obstruction to the track. e.g., faecal or biliary fistula.
- Persistent drainage through the track, like urine/faeces/CSF.
- Lack of rest in post-operative period.
- Epithelialization of the track e.g. malignancy, dense fibrosis, irradiation, malnutrition, ischemia, drugs like steroids etc.

Scanned with CamScanner

Clinical examination : Inspection

- **Location :** usually gives diagnosis in most of the cases.
  - **Sinus**
    - Pre-auricular- root of helix of ear.
    - TB- neck region.
  - **Fistula**
    - Branchial- sternomastoid anterior border.
    - Parotid- parotid region.
    - Thyroglossal- midline of neck below hyoid bone.
- **Number :** usually single but multiple seen in HIV patients or actinomycosis.
- **Opening**
  - Sprouting (growth) with granulation tissue- foreign body.
  - Flushing (redness) with skin- TB.
- **Discharge :**
  - White thin caseous, cheesy like : TB sinus.
  - Fecal : fecal fistula.
  - Yellow sulphur granules : actinomycosis.
  - Bony granules : osteomyelitis.
  - Yellow purulent : staphylococcus infections.
  - Thin mucous like- brachial fistula.
  - Saliva : parotid fistula.
- **Palpation :** Temperature and tenderness and palpation of lymph nodes.

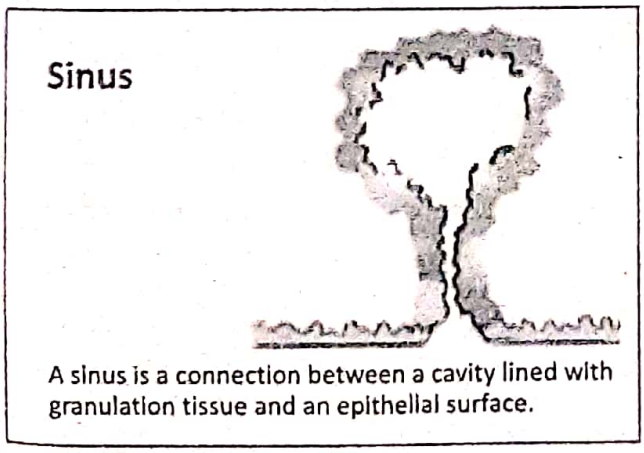

Fig 3 : Sinus

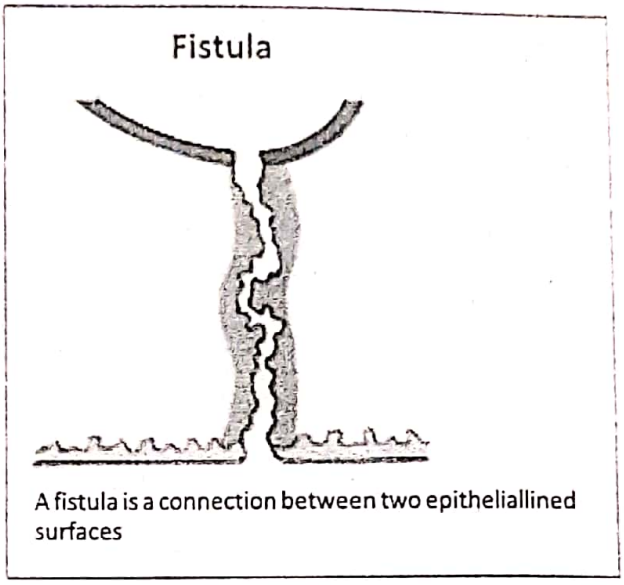

Fig 4 : Fistula

Investigation

- Hemogram : Hb%, TLC, DLC, ESR.
- Discharge for C/S (culture and sensitivity), AFB (acid fast bacilli/T.B.), cytology, Gram staining.
- X-ray of the part to rule out OM (osteomyelitis), foreign body.
- MRI, CT, Sinogram.
- Biopsy from edge of sinus.
- **Fistulography/ Sinusography**
  - For knowing the exact extent/origin of sinus or fistula.
  - Water soluble or ultra-fluid lipoidal iodine dye is used.

Treatment

Basic principles

- Antibiotics,
- Adequate rest,
- Adequate excision like fistulotomy, fistulectomy.
- Adequate drainage-After excision specimen should be sent for HPE (Histo pathological examination).
- Treating the cause- e.g. – ATT (anti tubercular therapy) for TB sinus, removal of any foreign body, sequestrectomy for osteomyelitis.

Scanned with CamScanner